• द्वितीय अध्याय •

कबीरकालीन परिस्थिति

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

-: कबीरकालीन परिस्थिति :-

हिंदी साहित्य के सारे कवियों में कबीर जैसा विलक्षण प्रतिभाशाली और विद्रोही कवि कोई दूसरा नहीं हुआ। कबीर का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ उन्होंने इन क्रांतिकारी प्रतिभासंपन्न संत कवि के व्यक्तित्व के निर्माण में पर्याप्त योग दिया है।

कबीर ने एक ओर तो समकालीन परिस्थितियों का सामना किया और दूसरी ओर समाज की रक्षा के लिए उत्साहवर्धक अपना कदम बढ़ाया। जिस समय असंख्य लोग इस विकरालता में आँखें बंद करके कराह रहे थे, उस समय कबीर पूर्ण उत्साह के साथ निर्भिकता से उसका सामना करने में मग्न थे।

कवि समाज का एक अंग होता है। और उसकी कृति भी समाज का एक अंग होती है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि कवि और युग पारस्पारिक आदान प्रदान करते ही हैं। कवि युग को कुछ देता है और युग से कुछ लेता भी है। यदि ऐसा न हो तो कवि समाज के किसी काम का नहीं रह जायेगा। इसीलिए किसी कवि की कृतियों के अध्ययन के लिए उसकी विचारधाराओं एवं भावाभिव्यक्तियों के सम्यक मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी परिस्थितियों

का ज्ञान प्राप्त किया जाए। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमे उस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं बल्कि सर्वथा: अनिवार्य ही होता है।

1. राजनीतिक परिस्थिति :-

इतिहास की दृष्टि से मुहम्मद तुगलक [सं॰1325-53] और फीरोज-शाह तुगलक [सं॰ 1351] आदि क्रूर शासकों के कारण भारतीय समाज पर विपत्तियों का भार दिन - ब - दिन बढता जा रहा था। इसके पश्चात् तैमूर का निर्दय आक्रमण हुआ, जिसके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। इसके कारण तो हिन्दु - समाज की रीढ़ ही टूट गई थी।

इस राजनीतिक संघर्षों का जन्म सत्ता और सम्पति पर अधिकार कर लेने की भावना के कारण ही हुआ। संघर्ष का विकास सृष्टि विकास के साथ हुआ। समय - समय पर देशी - विदेशी एवं भारत के प्रान्तीय राजाओं के साथ यह संघर्ष होता रहा। कबीर के समय में अर्थात मध्ययुग में भारत में मुसलमानों का शासन था। चौदहवीं शताब्दी में सन 1320 से 1388 तक तुगलक बादशाहों ने शासन किया। उसके पूरे शासन काल में भारत देश में चारों ओर निराशा और अशांति ही थी।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात फिरोजशाह तुगलक 23 मार्च 1351 को देहली का सुलतान बना। उसके शासन काल में भी लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़े। उसने कई हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया और जो लोग उसके कहने पर मुसलमान नहीं बने या जिन्होंने अपने बच्चों को मुसलमान नहीं बनाया था उन पर 'जजीया' नामक जुल्मी टैक्स लगा दिया। इस कारण कई हिन्दु मुसलमान बन गये और वे कर से बच गये। कहते हैं कि " उसने एक ब्राहमण को केवल यह कहने पर कि उसका धर्म भी इस्लाम के समान श्रेष्ठ है, जिन्दा जलवा दिया था। उसने अपनी धर्मान्धता के कारण न मालूम कितने निर्दोष हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। " (1)

साथ ही साथ उसे लोगों को गुलाम बनाने का बहुत बडा शौक था। उसने 1,80,000 लोगों को गुलाम बनाकर रखा था। फिरोजशाह की

मृत्यु के बाद सन 1394 तक कई सुलतान बने और चले गये।

थोडे दिनों के बाद दिल्ली का शासन - सूत्र लोदी वंश के हाथ में चला गया। लोदी वंश के कार्यकाल के संदर्भ में डॉ. गोविंद त्रिगुणायत जी का कहना है कि, " बहलोल लोदी ने एक बार फिर से देश को एकसूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी सिकंदर लोदी ने अपनी अदूरदर्शिता और धर्मान्धता से बहलोल के प्रयत्न पर पानी फेर दिया। " (2)

सिकंदर ने अपने होते हुए किसी दूसरे राजा को सिर नहीं उठाने दिया। उसने हिन्दुओं के मथुरा जैसे पवित्र तीर्थ स्थान को तुडवा कर उसकी जगह मुसलमानों के लिए मस्जिद बनवा दी। " वह इतना हठधर्मी था कि उसने इस्लाम धर्म के प्रचार में 1500 हिन्दुओं तक की हत्या करवाई थी। " (3)

सिकंदर लोदी की मृत्यु के पश्चात् उसके बेटे इब्राहिम लोदी ने भारत का शासन संभाला। वह भी अपने पिता की तरह, क्रूर और निर्दयी शासक था।

बाबर ने इब्राहिम लोदी को पानीपत में लडाई के मैदान में ही मार दिया और उसने मुगल साम्राज्य की नींव डाल दी।

मुसलमान शासकों में जो कुछ नरम स्वभाव के व्यक्ति थे, वे भोग - विलास में मस्त रहते थे। जनता की सुख समृद्धि और उसकी सुविधाओं से उन्हें कोई मतलब नहीं था। ऐसे शासकों के मुँह लगे अधिकारियों ने जनता साथ कैसी मनमानी की होगी जनता पर कितने और कैसे - कैसे जुल्म ढाए होंगे इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अपनी दुर्दशा के भय से कई साधु - सन्त, तत्वज्ञानी बनारस को छोडकर चले गये, किन्तु रामानंद, कबीर जैसे दार्शनिकों ने अपने ज्ञान की ज्योति को बुझने नहीं दिया। ऐसी परिस्थिति में रहकर भी उन्होंने अपने सामाजिक सुधार के कार्य को आगे जारी रखा। इस प्रकार 13 वीं शताब्दि से 15 वीं शताब्दि तक का काल राजनीतिक संघर्षों का काल था।

निष्कर्षत: कबीर का जब आविर्भाव हुआ, तब जनता दु:ख, दुर्भिक्ष, विपत्ति और अत्याचारों के घटाटोप में घिरी हुई थी और किसी प्रकार जीवित रहकर अपने दिन काट रही थी।

2. सामाजिक परिस्थिति :-

कबीरकालीन राजनीतिक परिस्थितियों से अनुमान लगाया जा सकता है, कि उस काल की सामाजिक अवस्था अच्छी नहीं रही होगी। कबीर-कालीन समाज विभीन्न धर्म विभिन्न जातियों विभिन्न सम्प्रदायों और अलग-अलग राज्यों के रूप में इस प्रकार बिखर गया था कि तत्कालीन संस्कृति के अनेक रूप बन गए थे। किसी भी समय की सामाजिक परिस्थितियाँ संघर्षों का परिणाम मात्र होती हैं।

वर्ण - व्यवस्था के कारण जातियाँ तथा छूत - अछूत, ऊँच - नीच का भाव बढ गया। जातियों के सीमित कर्म और सीमित अधिकार होने के कारण उनका जीवन एकांगी हो गया था। वैदिक काल में ब्राह्मण विद्या का वैश्य कृषि तथा व्यवसाय का और शूद्र सब की सेवा करने के अधिकारी थे। इससे एक वर्ण का दूसरे वर्ण से इर्ष्या और संघर्ष चलता रहा और बढता रहा। इनमेंसे कोई उच्च वर्ग का होने के लिए तरस रहा था, तो कोई धन संपत्ति तथा राज्य पाने के लिए। ये सामाजिक मान्यताएँ इनके गले की फाँसी बन गयी थी।

" लोक वेद कुल की मरजादा, इहै गले में पाती।
आधी चलि करि पीछां फिरिहै हू है जग में हाँसी। " (4)

शासक वर्ग लूटे हुए धन से ऐश्वर्य और विलास में उन्मत्त था, परिणामत: समाज भी पतनोन्मुख हो गया। उसके आचार तथा व्यवहार में शैथिल्य आ गया।

बडी जातियाँ छोटी जातियों का शोषण कर रही थी और वे निम्न वर्ग के लोग समाज में अपमान की दृष्टि से देखे जाते थे। हिन्दु जनता के रीति - रिवाज को काफी ठेस पहुँची। जिससे उन्हें अनेक कठिनाईयोंका सामना करना पडा। देश में अधिक संख्या हिन्दुओं की थी। पर वे अब

आपसी फूट के कारण कमजोर हो चुके थे, जिसके कारण उन्हें पराजित होना पडा।

मुसलमान धर्म को प्रचार एवं प्रसार के लिए राजकीय सुविधायें प्राप्त थी। अच्छे पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति होती थी और साधारण पदों पर हिन्दुओं की। इन्ही कारणों से हिन्दु निर्धन होते गये और मुसलमान धनी। इसी लिए हिन्दु - मुसलमान दोनों वर्गों में काफी असमानता हो गई और असमानता के कारण दोनो में संघर्ष के भाव बढते गये।

कबीरकालीन समाज में धर्म की समस्या जीवन की मूल समस्या थी। अपने धर्म और जाति की रक्षा के लिए वे कुछ भी बलिदान कर सकते थे। धर्म के नाम पर कहीं किसी को जलाया जा रहा था तो कहीं कर - भार से उन्हें पीडित किया जा रहा था। इन विविध अत्याचारों के कारण दोनों वर्गोंमें संघर्ष होना स्वाभाविक था।

कबीरकालीन भारतीय समाज का सारा वातावरण दुर्गुणों से दूषित था। नैतिकता का पतन हुआ था। इसलिए एक दूसरे को धोका देकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे। समाज में चोर, ठग, लूटेरे भी थे जो दूसरों की कमाई पर जीवित थे। तत्कालीन समाज के काजी, मुल्ला, पाँडे, लोगों को भ्रम में डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे।

समाज में विलासी वातावरण पैदा हो गया था। सुन्दरियों का बलात् अपहरण तथा राजदरबार में बहूनारी संग्रह विलासिता के प्रतीक थे। फिरोजशाह तुगलक के मंत्री खानेजहाँ ने अपने अन्तपुर में दो हजार से अधिक स्त्रियाँ रखी थीं। कामवासना में अनुरक्त होकर समाज के नर-नारी नारकीय जीवन भोग रहे थे। एक विवाह की जगह बहु विवाह होने लगा था। इसके लिए न कोई नियम था और न कोई सामाजिक बन्धन। स्त्रियों का समाज में स्वगत महत्व अधिक था। नारी केवल सुख भोग की ही वस्तु बन गयी थी और उसका स्थान समाज में प्रतिष्ठापूर्ण नहीं था।

कबीरकालीन समाज में वेश्यागमन तथा मद्यपान का भी प्रचलन था। चोरी, बेईमानी, घूसखोरी आदि कुकृत्यों से समाज में भ्रष्टाचार फैल रहा था। लालची, लोभी, मतखरा आदि विपरित तत्वों का समाज में आदर होता था। और सज्जन लोग निरादर पाते थे। मूर्खों का बहुसंख्यांक वर्ग था। मतिहीन लोगों की कमी समाज में नहीं थी। परम्परा के प्रवाह में जीवित रहने वाले पण्डित, मुल्ला एवं पाँडे थे और प्रत्यक्ष जीवन को अत्याधिक महत्व देने वाले तत्कालीन संत थे। पण्डित, योगी, सन्यासी, तपस्वी सभी अपने - अपने क्षेत्र में माने हुऐ थे। तत्कालीन लोक - धर्म अंधानुकरण था जो कि लोगों को सही मार्ग से विचलित किये हुए था। इन्हीं अविवेकी लोगों से साधारण जनता का समाज बना था। कामवासना में अनुरक्त होकर समाज के नर - नारी नारकीय जीवन भोग रहे थे।

" नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के जे सुमिरे निहकाम ।।"(5)

अपनी कमजोरियों के कारण हिन्दु शासक पराजित हुये और उन्हें दूसरों के अधीन होना पडा। इस पराधीनता में प्रजा को भी अनेक कष्ट झेलने पडे। कबीर के समय में हिन्दु समाज अपनी घोर हीनावस्था में था। उसमें न तो किसी प्रकार का उत्साह शेष रह गया था और न कोई स्फूर्ति ही। उसमें शिक्षा और सभ्यता दोनों का अभाव था। यवनों के भावों और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था । साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था। समुचित शिक्षा के अभाव में अनेक प्रकार के अंध विश्वास और आडम्बर समाज में फैलते जा रहे थे। धर्म के ठेकेदारों की तूती बोल रही थी।

साधारण जनता का सा सादगी में जीवन व्यतीत करने वाला सन्तों का एक ऐसा क्रान्तिकारी वर्ग था जिसने सभी अत्याचारों एवं दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में अपना झंडा ऊँचा किया। इन सन्तों में अधिकतर निम्न जाति के लोग थे जो समाज और राज्य की तरफ से तिरस्कृत थे। फलस्वरूप समाज द्वारा अपमानित जातियों का एक अलग वर्ग बना जो 'सन्त समाज' के नाम

ते जाना गया। अतएव इन सन्तों ने सारे मनुष्यों को एक जाति का माना और मानव धर्म को एक मूल धर्म के रूप में स्वीकार किया। इनका ईश्वर सत्पुरुष सत्य था। संक्षेप में सत्य इनके जीवन का सार था। सन्तों का असन्तोष काव्य के माध्यम से की जानेवाली सबल क्रान्ति थी, जो कि उन्हें विविध सामाजिक अभावों के रूप में अनुभूत हो रहा था। इस प्रकार तत्कालीन सन्तों द्वारा की गई क्रान्ति भी सामाजिक संघर्ष की एक सबल कडी थी।

कबीरकालीन समाज के व्यवसाय और व्यापार पर भी दृष्टिपात करना हमारे विचार में अनुचित नहीं होगा। कबीर युग में लोग सरकारी नौकरियों द्वारा या स्वतंत्र व्यवसाय द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। मुसलमान शासकों ने छोटे - छोटे सरकारी कर्मचारी प्राय: हिन्दु ही नियुक्त कर रखे थे, जिनके बिना मुसलमान शासकों का कार्य संचालन असम्भव था। हिन्दु ही अनिवार्यत: पटवारी, लेखापाल, कोषाध्यक्ष एवं जिले के अन्य कर्मचारी होते थे तथा गवर्नर और जिले के हाकिम मुसलमान थे। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित कानून के अधिकारी काजी थे। मुसलमान शासकों ने केवल न्यायाधिकार ही अपने हाथ में ले रखा था।

वास्तव में तत्कालीन समाज में निहित जाति धर्म के भेद - भाव जनता की दुर्गति के कारण थे। इसी कारण जनता में विविध जातिय वर्ग बने और जिससे उन्हें पराधीन भी होना पडा। पराधीनता के कारण हिन्दुओं की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी थी। अब उनकी गौरव गाथा ही शेष रह गयी थी। गरीबी के कारण हिन्दु स्त्रियाँ मुसलमानों के घर मजदूरी करती थी। परिस्थितिवश हिन्दु जनता मुसलमान बनती जा रही थी। अब ऐसा धर्म संकट का काल आ गया था कि उसे किसी एक धर्म का बन जाना आवश्यक था।

सामाजिक संघर्ष होने के कारण समाज में विभिन्न वर्ग बन गए। जातिगत मतभेद निर्माण हो गये। मुसलमानी अन्याय के कारण समाज में पर्दा प्रथा प्रचलीत हुई।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीरकालीन सामाजिक स्थिति का आकलन निम्न शब्दों मे किया है - "हिन्दु लोगों का सामाजिक -ह्रास होने के कारण उनका जीवन दारिद्र्य और निराशा में ही बीतने लगा। इसी एकान्तिकता और निवृत्यात्मकता से प्रेरित हो उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की। ऐसी विकराल राजनीतिक परिस्थितियों में भारतीय जनता को ऐसे कर्णधार की आवश्यकता थी जो उनके लिए ' तिनके का सहारा ' बन सकता। कबीर का इस कर्णधार के रूप में जन्म हुआ।"(6) इनका काव्य लोकमानस के इतना सान्निकट है कि उससे पूर्व का काव्य चाहे कितना ही लोकमंगल की भावना से पूर्ण हो परन्तु वह इनके काव्य के समान लोकप्रिय एवं जनप्रिय नहीं हो सका।

3. <u>धार्मिक परिस्थिति</u> :-

कबीर के पूर्व ही हिन्दु धर्म पर संकट छा गए थे। इस्लाम ने हिन्दुओं को जो कुछ दिया वह सब उन्हें प्राप्त हुआ। इस्लाम शासन की छत्रछाया में हिन्दु मुसलमान बन रहे थे। इस्लाम प्रचार की प्रतिक्रिया से हिन्दु - भावना अनेक रूपो में व्यक्त हुई। वैदिक काल के मध्यकाल तक जितने भी धर्म भारतवर्ष में हुए थे प्राय: सभी धर्मों का अस्तित्व यहाँ विद्यमान था और सभी धर्मों को मानने वाले लोग भी थे। देश का हर एक व्यक्ति किसी न किसी धर्म से जुडा हुआ था। इन धर्मों में शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि समाज में प्रचलित धर्म थे। इस्लाम धर्म का विरोध सभी हिन्दुओं ने किया। परन्तु इस्लाम धर्म राजनीतिक शक्ति का सहारा पाने से स्वस्थ बना रहा। साथ - साथ सभी भारतीय धर्मों का अस्तित्व भी अलग रूप से बना रहा।

धर्म एवं वाणी की सभी व्यवस्थाएँ मानव विकास के लिए थी। हरेक मनुष्य अपनी - अपनी योग्यता के अनुसार अपने - अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करता था। परन्तु बाद के कालों में धर्म एवं वर्ण का स्वरूप बहुत विकृत हो गया। उसमें नाना प्रकार के मिथ्याचार जुडते

गये। मध्यकाल में धर्मों एवं जातियों में विविध असमानता थी। सभी धर्मों में पाखण्ड भ्रष्टाचार एवं ढकोसले प्रचलित थे। पुराण, उपनिषद तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों की कथाएँ समाज प्रचलित थी। पण्डित और पाँडे उसके प्रचारक थे। ईश्वर के अनेक अवतारों में तब की गहरी आस्था थी। शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि धर्मों के साथ जनता अब भी अपना गहरा सम्बन्ध बनाये हुए थी।

अ] शैव धर्म :-

शैव धर्म का अविर्भाव वैदिक काल से ही माना गया है। शिव की उपासना आदिकाल से पशुपति तथा महादेव के रूप में होती चली आ रही है। मध्यकाल में शैव धर्मानुयायी विद्यमान थे, जिनकी संख्या उत्तर - भारत में अधिक थी। इस काल में अनेक शिव मंदिर बनाये गये थे और उनमें शिवमूर्ति रखी गई थी। सोमनाथ के मंदिर में शंकर की मूर्ति कलापूर्ण ढंग से रखी गयी थी। मुहम्मद गोरी ने जब इस मंदिर पर आक्रमण किया, तो देश के सारे शैव मतावलम्बी उसकी रक्षा के लिए एकत्रित हुये थे, परन्तु इस धर्म में भी अनेक कर्मकाण्ड जुड गये थे। शैव धर्मानुयायी अपने को पवित्र और सर्वश्रेष्ठ समझते थे, जिससे अन्य धर्मों के साथ इसका संघर्ष चलता रहा था।

ब] वैष्णव धर्म :-

भगवान विष्णु के नाम पर चलने वाला वैष्णव धर्म मध्यकाल में भी विद्यमान था। वैदिक काल से मध्यकाल तक इस धर्म की अटूट परम्परा बनी रही। विष्णु-भक्तों ने उपासना में कर्मकाण्ड और पाखण्ड पर जरा भी संदेह प्रकट नहीं किया। ब्राह्मण लोग तंत्र-मंत्र का जाल फैलाकर अपनी जीविका चला रहे थे। गुरु और शिष्य दोनों अन्धे थे, जो लालच का दाँव खेलकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे।

" जाका गुरु भी अंधला चेला खरा निरंध ।
अंधा - अंधा ठेलिया, दुन्यूँ कूप पडंत।।" (7)

बाह्य आडम्बरों में तब विश्वास करते थे आन्तरिक पवित्रता किसी में भी नहीं रह गयी थी। पण्डित वेद, पुराण के थोथे ज्ञान पर अभिमानी हो गये थे। मरने के बाद आत्मा की शान्ति के लिए पिण्ड दान दिया जाता था। कौवे को खिलाकर लोग अपनी पितृ-श्रद्धा व्यक्त करते थे।

मध्यकालीन सन्तों ने इस धर्म की बुराइयों का खुलकर विरोध किया और इस विरोध पर उन्हें अनेक तरह से संघर्ष करना पडा। मुसलमान शासकों ने हमेशा इस धर्म को नष्ट करने की कोशिश की।

क] शाक्त मत :-
=======

शाक्त मतावलम्बी आद्या देवी की शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते थे। इस मत में तंत्र - मंत्र तथा योग साधना को अधिक महत्व दिया गया था। शाक्तों ने समाज में जोग जैसी कुरीतियों का प्रचार कर लोगों को भ्रम में डाल रखा था। यह लोग अद्या देवी को खुश करने के लिए अनेक प्रकार के हिंसात्मक कार्य करते थे। सन्तों ने इस धर्म की बहुत निन्दा की है। बंगाल में इस धर्म का अधिक प्रचलन था। वैष्णव, शैव आदि धर्मों से इसका विरोध था जिसके कारण संघर्ष की स्थिति सभी धर्मों के साथ बनी हुई थी।

ड] बौद्ध धर्म :-
=======

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति उस समय हुई जब समाज में अनेक प्रकार की हिंसाएँ और कर्मकाण्ड प्रचलित थे। और हर एक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार कर्म करने का अधिकार नहीं था। इसीलिए बौद्ध धर्म अपनी समकालीन परिस्थितियों में वैदिक धर्म का विरोधक था, परन्तु बाद में इस धर्म को अन्य धर्मों से भी संघर्ष करना पडा। जैन धर्म इस धर्म का निकटतम प्रतिद्वंद्वी था। दोनों धर्म के अनुयायियों में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के कारण हमेशा संघर्ष होता था।

बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ बन गई थीं। हीनयान और महायान। हीनयान सम्प्रदाय वाले सिद्धांतोवादी थे और बुद्ध द्वारा बताये गये उपदेशों में पूर्ण विश्वास रखते थे। महायानियों का विचार उनसे कुछ अलग था। वे लोग धार्मिक नियम की कठोरता पर ज्यादा जोर नहीं देते थे। भक्ति तथा तंत्र - मंत्र में इनका पूरा विश्वास था। ये लोग हीनयानियों को तुच्छ समझते थे, जिससे बौद्ध धर्म की दोनों शाखाओं में पारस्परिक संघर्ष बना हुआ था।

सिद्धों की ही परम्परा में वज्रयान और सहजयान सम्प्रदाय का विकास हुआ। सहजयान सम्प्रदाय वज्रयान का परिवर्तित रूप था जो मध्यकालीन समाज में विद्यमान था। इस सम्प्रदाय में सहज साधना और गुरु को अधिक महत्व दिया गया है, जिसका वर्णन मध्यकालीन सन्तों ने किया हैं।

सिद्ध योगियों की परम्परा में नाथ पंथ का विकास हुआ, जिसके मूल प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं। मध्यकालीन सन्त समाज गुरु गोरखनाथ के नाम - पंथ से प्रभावित था और पिछडी जातियों के लोग इस पंथ के अनुयायी बन गए थे। सनातन धर्मियों तथा परम्परागत मान्यताओं में विश्वास रखने वालो से बौद्ध धर्म का वैचारिक अलगाव बना हुआ था जो संघर्ष का बहुत बडा कारण था।

इ] जैन धर्म :-

जैन धर्म का अविर्भाव लगभग 500 ई. पूर्व में हुआ। इस धर्म के प्रणेता स्वामी महावीर थे। जिन्होंने हिंसात्मक कार्यों के विरोध में अपने मत का प्रचार किया। इस धर्म के अनुयायी भी पक्के अहिंसावादी थे। इन लोगों ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और शान्ति को मूल सिद्धांत रूप में अपनाया। आचरण और आचार की पवित्रता जैन धर्म का मुख्य रूप था। इस धर्म की दो शाखाएँ [श्वेतांबर और दिगम्बर] हो गयीं और दोनों के विचार तथा रहन-सहन में काफी अन्तर आ गया। मध्यकाल में दोनों शाखाओं के दो अलग - अलग रूप थे। श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर और

और नग्न वेश में रहने वाले दिगम्बर कहे जाते थे। वे पूरे भारत में फैले हुअे थे। परन्तु राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र में इनकी संख्या अधिक थी। जैन सन्तों ने मध्यकाल में अनेक भाषा तथा जीवनोपयोगी ग्रन्थ लिखे। हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्म इस धर्म के विरोधी थे। यह धर्म भी अपनी संघर्षमयी परिस्थितियों में जी रहा था।

ई] सूफी धर्म :-

यह अत्यन्त प्राचीन धर्म माना गया है। और सूफीयों का कहना है की इसके मूल प्रवर्तक आदम [आदि पुरुष] थे। मध्यकाल में इसका प्रभाव दिखाई देता है। सूफी विचारधारा और मध्यकालीन भारतीय विचारधारा में बहुत कुछ साम्य है। इस धर्म-सरता प्रेम के क्षेत्र में भी है, जो भारतीय विचारधारा के निकट पडती है।

इस्लाम धर्म के कारण सूफी धर्म अधिक प्रसिद्ध न हो सका। क्योंकि इस धर्म में उतनी कट्टरता नहीं थी, जितनी की इस्लाम धर्म में। इसको शासक वर्ग से कोई सहायता भी नहीं मिली। यह भारत के बाहर का धर्म था। अत: भारतीय जनता इससे प्रभावित नहीं हुई। हिन्दुओं में इस धर्म के प्रति घृणा और ईर्ष्या के भाव थे, जिसके कारण दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

ग] इस्लाम धर्म :-

14 वीं 15 वीं शताब्दी में इस्लाम का प्रचार भारत में हो चुका था। शासन सत्ता मुसलमान शासकों के हाथ में होने के कारण इस धर्म का कलेवर शक्तिशाली हो चुका था और अन्य भारतीय धर्मों की शक्ति निर्बल पड गयी थी।

इस्लाम का प्रचार हिन्दु धर्म के विरोध में होने के कारण सारी भारतीय जनता इसके विरुद्ध हो गयी। और सबल क्रान्ति करने का अवसर ढूँढने लगी। हिन्दुओं के मंदिर को तोडना तथा उन पर अनेक प्रकार

के अत्याचार करना आदि अमानवीय व्यवहारों मे संघर्ष की भयानक स्थिति पैदा कर दी थी। जिसके कारण सारे भारतीय धर्म ह इस्लाम के विरोधी बने रहे।

इस प्रकार मध्यकाल में दो धर्मों का संघर्ष बहुत तेजी से चल रहा था। हिन्दु धर्म बहुत पुराना था, जो अपने देश के रीति - रिवाज तथा संस्कारों में घुल - मिल गया था। दूसरी तरफ इस्लाम धर्म तलवार के बलपर चलाया जाने वाला धर्म था।

4. आर्थिक परिस्थिति :-

भारत की आर्थिक स्थिति इस समय बहुत ही अच्छी थी। इसी कारण इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था। देश के धन ने विदेशी शासक मुहम्मद गजनी, मुहम्मद गोरी, चंगेज खाँ आदि अनेकों को लूटने के लिए आमंत्रित किया। जब मुसलमानों ने यहाँ अपनी सत्ता प्रस्थापित की तो आर्थिक प्रगति हुई। खेती और उद्योग यहाँ के मुख्य स्त्रोत थे। अतिवृष्टि आदि के कारणों से खेती को यदा - कदा नुकसान होने से अकाल भी पडता था। कृषि उत्पादित अनेक वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। इसकाल में सोना, चाँदी, कपडा आदि अनेकों उद्योग थे। देश में वस्तुओं की कमी नहीं थी, लेकिन उसका वितरण उचित ढंग से नहीं होता था। धन - दौलत अमीर लोगों के पास थी जो अल्पसंख्याक थे। सुलतान तथा उनके उच्च पदाधिकारी, हिन्दु राजा और उनके मुख्य पदाधिकारी, बडे व्यवसायिकों के पास पर्याप्त संपत्ति थी।

मध्यमवर्गीय नौकरी पेशेवाले, किरानी, व्यवसायी भी अच्छे थे, परन्तु सामान्य जनता जिनकी संख्या सब से अधिक थी, गरीब थी, और अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन नहीं थे। इस सामान्य जनता का सम्बन्ध हिन्दु से हैं। मुसलमान शासक का उद्देश उस द्वितीय श्रेणी के नागरिक को दुर्बल बनाए रखने का था, जिससे कि यह वर्ग सिर न उठा सके। इन पर अनेक प्रकार के कर लगाये जाते थे। खेती

का 50 प्रतिशत 'भूमि कर' के रूप में लिया जाता था इसके अलावा गृहकर, चारण - भूमि कर, जजिया कर आदि अनेकों प्रकार के कर उनसे लिए जाते थे। हिन्दुओं को इतना कमजोर बना दिया गया था कि उनके घरों मे सोने या चाँदी के टके या पीतल का कोई भी चिह्न् दिखाई नही देता था।

मुसलमानों की आर्थिक दशा हिन्दुओं से अच्छी अवश्य थी, परन्तु जो - जो धर्म - परिवर्तन जन्म आदि के कारण इनकी जन - संख्या में वृद्धि होती गई, त्यों - त्यों इनकी आर्थिक दशा में अन्तर बढना स्वाभाविक था। मुसलमान भी खेती, व्यवसाय आदि करते थे, लेकिन इनके ऊपर कर-भार हिन्दुओं से कम था। इसलिए हिन्दु कृषक और जुलाहे से मुसलमान कृषक और जुलाहे की आर्थिक दशा अधिक अच्छी थी।

सामाजिक कल्याण के लिए कोई भी व्यक्ति धन नहीं खर्च करता था, जिसके कारण समाज में आर्थिक असमानता थी। कबीर ने कहा था कि यह समाज की कैसी दुर्व्यवस्था है ? एक गरीब होता है और दूसरा उसे दान देता है। एक भूखों मरत है, दूसरा सुरापान करता है।

"एकनि में मुक्ताहल मोति, एकनि व्याधि लगाई ।
एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा ।।" (8)

लोग दो - दो दीपक घर में जलाते हैं, परन्तु मंदिर में हमेशा अँधेरा रहता है -

"दै द्वै दीपक धरि धरि जोय, मुंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारय, बाहरि किया पसारा।।" (9)

कबीर की उलटबासियाँ कुछ इन्हीं अर्थों को लेकर अभिव्यक्त हुई हैं। छोटे - छोटे वर्गों में सदा संघर्ष होता था, प्रजा से लेकर राजा तक धन संग्रह किया करते थे। एक संग्रह करता था, दूसरा उसका अपहरण । इस तरह समाज की आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित थी।

आर्थिक परिस्थिति और सामाजिक परिस्थिति अन्योन्याश्रित थी।

उस समय देश का बहुसंख्य समाज आर्थिक शोषण का शिकार था। समृद्धि के मध्य विपन्नता थी। धन - धान्य की विपुलता थी तथा ऐश्वर्य एवं वैभव का साम्राज्य था, परन्तु सामान्य जनता विविध करों के भार से दबी जा रही थी। शासक - वर्ग तथा व्यापारी - वर्ग का जीवन - स्तर ऊँचा था, परन्तु कृषक एवं श्रमिक की आर्थिक दशा चिन्तनीय थी।

5. सांस्कृतिक परिस्थिति :-

हिंदी भक्ति साहित्य में भारतीय संस्कृति और आचार - विचार की पूर्णत: रक्षा हुई है। समन्वयात्मकता भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। पुराणों में समन्वयात्मकता की प्रवृत्ति को पुनर्जागृत करने का प्रयास किया गया है। उनमें पूजा-उपासना और कर्मकांड में दर्शन का पुट दिया गया है। मूर्ति - पूजा, तीर्थ - यात्रा, धर्म - शास्त्रों का सम्मान, कर्म - फल में विश्वास, अवतारवाद तथा गौ ब्राह्मण की पूजा पौराणिक धर्म की प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिनका अनु - गुंजन सगुण भक्ति साहित्य में सर्वत्र श्रवण गोचर होता है।

मध्यकालीन धर्म - साधना में पूर्ववर्ति सभी धर्म साधनाएँ अपने जित किसी रूप में बनी रही। शैव, शाक्त, भागवत, सौर गाण, पद्य जैसे प्रमुख सम्प्रदायों में ज्ञान, योग, तंत्र और भक्ति की प्रवृत्तियों का समन्वय होने लगा। योग का प्रभाव उस समय इतना अधिक बढा कि भक्ति, ज्ञान और कर्म के साथ भी योग शब्द का जोडा जाना आवश्यक समझा जाने लगा। राम और शिव भगवती दुर्ग और वैष्णवी में समन्वय लाने की प्रक्रिया बराबर चलती रही। जिसकी प्रतिध्वनि तुलसी के 'रामचरित मानस' में -

" शिवद्रोही मम दास कहावा,
सो नर मोंहि सपनेहु नहि पावा।" (10)

आदि शब्दों में पाई जाती है।

समन्वयात्मकता की उक्त प्रवृत्ति धर्म के समान मूर्ति एवं वास्तु कलाओं

में भी देखी जा सकती हैं। एलोरा के समीप कैलास मंदिर में शिव की मूर्ति के सिर के ऊपर बोधिवृक्ष स्थित है। चम्बा नरेश अजय पाल के शासन काल में उत्कीर्ण वस्त्र, ब्रह्मा और शिव के साथ बुद्ध भी है। खजुराहो से उपलब्ध कोक्कल के बैद्यनाथ मंदिर वाले शिलालेख में ब्रह्म जिन बुद्ध तथा वामन को शिव का स्वरूप कहा गया है। भक्ति आन्दोलन कदाचित् इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

इसी काम में हिन्दु और मुस्लीम संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकट आई। संगीत, चित्र तथा भवन निर्माण जैसी कलाओं में दोनों संस्कृतियों के उपकरणों में समन्वय आरंभ हो गया। दोनों जातियों के साहित्य एवं शैलियाँ यत्किंचित रूप में एक दूसरे को प्रभावित करने लगी। इस प्रकार मध्यकाल में भारत की सामाजिक संस्कृति का रूप और अधिक निखरने लगा।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - " कबीर ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खडे थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ से एक ओर ज्ञान, निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा। जहाँ पर एक ओर भक्ति मार्ग निकल जाता है और दूसरी ओर योग मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है और दूसरी ओर सगुण साधना - उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खडे थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गये हुए मार्गों के गुण-दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कबीर का भगवद्दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया। "(11)

कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, और शास्त्रगत रूढियों और परम्पराओं के मायाजाल को बुरी तरह छिन्न - भिन्न किया है।

6. साहित्यिक परिस्थिति :-

साहित्य समाज का दर्पन होता है। जो-जो बातें समाज में घटती

हैं उनका चित्रण साहित्य में मिलता है, क्योंकि साहित्यकार समाज में ही जन्म लेता है। मध्यकालीन समाज विविध संघर्षों में टूट गया था। उस समय अनेक धार्मिक, आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्तियाँ हो रही थी। इन्हीं क्रान्तियों के बीच मध्यकालीन साहित्य का भी विकास हुआ। उस समय भारत वर्ष में भाषाओं का प्रचलन था। अरबी, फारशी, उर्दू, संस्कृत तथा हिंदी आदि भाषाओं में साहित्य विकसित हो रहा था।

मुहम्मद तुगलक के राजाश्रय में अरबी, फारसी तथा भारतीय भाषाओं के 1000 कवि थे। जौनपुर उस समय अरबी, फारसी, सीखने का केन्द्र था। संस्कृत का प्राय: पतन हो चुका था।

उस समय समाज में ईश्वर के प्रति मुख्य रूप से दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित थीं। एक ईश्वर की उपासना सगुण या साकार रूप में करता था और दूसरा निर्गुण - निराकार के रूप में। इन सारी विशेषताओं से तत्कालीन साहित्य भी प्रभावित था। सगुण साहित्य का विकास कथानक के माध्यम से हुआ और निर्गुण साहित्य का स्वतंत्र रूप से। पहले प्रकार का साहित्य परम्परागत काव्य विधाओं में रचा गया और दूसरे प्रकार का साहित्य सहज रूप से अनुभव के आधार पर लिखा गया। सन्त काव्य अनुभव पर आधारित था, जिसने परम्परागत साहित्य के विरोध में अपने मतों का प्रचार किया, सीधी, सादी, सरल तथा प्रभावपूर्ण भाषा में लिखा गया सन्त - साहित्य अत्यन्त लोकप्रिय बन गया। संत - काव्य वर्णव्यवस्था, बाह्याडम्बर तथा धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोधी बनकर समाज में प्रतिष्ठित हुआ।

मध्यकालीन सन्तों में स्वामी रामानंद, कबीर दादू, रैदास आदि प्रसिद्ध हुए, जिन लोगों ने निर्गुण साहित्य का प्रचार एवं प्रसार किया। ये सन्त लोग निचली जाति के थे। इस लिए सन्त साहित्य में जाति - पाँति को कोई महत्व नहीं दिया गया। परिणाम स्वरूप सब भक्त संघटित हुए और निर्गुण साहित्य को आगे बढाया।

सन्त - साहित्य निर्गुण विचारधारा को लेकर चला और दूसरे

प्रकार का साहित्य ईश्वर के विविध अवतार तथा अन्य लीला - गान को लेकर लिखा गया। दूसरी तरफ इस्लाम साहित्य अद्वैतवादी एवं प्रेममार्गी था। सभी धर्मों के साहित्य भी भिन्न - भिन्न मतों से प्रभावित थे। वैचारिक अलगाव के साथ - साथ साहित्य के क्षेत्र में भी अलगाव था।

इस समय साहित्य का जनता से सम्पर्क टूट गया था। साहित्य का निर्माण जनता के हाथों में नहीं बल्कि संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वानों एवं आचार्यों तक सीमित था। साहित्य - सृजन संस्कृत में होता था, और प्राय: वह धार्मिक विधि - विधानों तक सीमित था।

* <u>साहित्यक संघर्ष के परिणाम</u> :-

1. धार्मिक मतभेदों के कारण साहित्य के क्षेत्र में भी विविध विचारधारा से प्रभावित काव्य लिखा गया।
2. सभी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में संत साहित्य लिखा गया।
3. मुख्य रूप से समाज में उर्दू और हिंदी साहित्य का प्रचार एवं प्रसार हुआ।
4. निर्गुण एवं सगुण साहित्य के माध्यम से भक्ति अन्दोलन एवं जनता में पुनर्जागरण शुरू हुआ।
5. संत काव्य के विकास से हिंदी साहित्य अधिक संपन्न हुआ।

<u>निष्कर्ष</u> :-

कबीर के समय में राजनीतिक संघर्ष और धार्मिक क्रान्ति के कारण समाज - जीवन तितर - बितर हो गया था। जनता अपनी रोजी-रोटी के लिए कोई भी धर्म, कोई भी व्यवसाय अपनाने के लिए तैयार होने लगी थी। आर्थिक समस्या मूल समस्या बन गई थी। धर्म और जाति समाज की

दुर्गति के कारण बन गये थे। उनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई थी। परिस्थितिवश हिन्दु जनता मुसलमान बनती जा रही थी।

समाज में अनेक पंथ व धर्म प्रचलित थे, जिनमें मिथ्याचार व पाखण्ड समाया हुआ था। शैव, वैष्णव, श्वेताम्बर-दिगम्बर, हीनयान-महायान, सिद्ध, शाक्त, वैरागी तथा वनखण्डी आदि साधुओं के अनेक सम्प्रदाय समाज में वर्तमान थे। राज्य की तरफ से सामाजिक विकास के लिए कोई अर्थ व्यवस्था नहीं थी। धन - संग्रह की भावना राजा - प्रजा, सब में तीव्र थी। इस कारण तत्कालीन समाज में नैतिकता का पतन एवं अत्याचारों का अधिक्य दिखाई देता है।

मध्यकालीन सन्तों में स्वामी रामानंद, कबीर, रैदास आदि प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने निर्गुण साहित्य को आगे बढाया। इन सन्तों में खासकर कबीर ने सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में आवाज उठायी, तथा एक दूसरे के निकट जाने की, मिलते रहने की भावना को, युग की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया। उन्होंने सभी मनुष्यों को एक जाति और सारे मानव मात्र को एक मूल धर्म के सूत्र में बांधने का प्रयास किया।

* * * * * *
* *
*

-: संदर्भ सूची :-

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
1.	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	कबीर की विचारधारा	साहित्य निकेतन, कानपुर - 1. तृतीय संस्करण श्रवणी संवत 2024.	71
2.	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	कबीर की विचारधारा	साहित्य निकेतन, कानपुर - 1. तृतीय संस्करण श्रवणी संवत 2024.	71
3.	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	कबीर की विचारधारा	साहित्य निकेतन, कानपुर - 1. तृतीय संस्करण श्रवणी संवत 2024.	71
4.	सं. डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041. वि.	98
5.	सं. डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041. वि.	31
6.	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	कबीर की विचारधारा	साहित्य निकेतन, कानपुर - 1. तृतीय सं. श्रीवणी सं. 2024	72

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
7.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	2
8.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	93
9.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	88
10.	डॉ. शिवकुमार शर्मा	हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6. नवम् संस्करण 1984	116
11.	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी.	कबीर	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाटना, छटा संस्करण 1988	157